

व्यवस्था की एक और विफलता

- लीना मेहेंदळे, भा.प्र.से.

आज से पचास वर्ष पहले की बात है, तब देश के हर कोने से हर समझदार व्यक्ति स्वतंत्रता की लड़ाई में अपना हाथ बँटा रहा था । ब्रिटीश सरकार देशवासियोंकी किसी दलील, किसी अपील को सुनने से इनकार कर रही थी । तब मुंबई में गावलिया, टैंक मैदान पर एक विशाल सभा का आयोजन हुआ । वहाँ नेताओं ने दो संदेश दिये, देशवासियों को संदेश दिया - "करो या मरो" और ब्रिटिश सरकार से कहा - "भारत छोडो" । सारा देश इन दो नारों से गूँज उठा । यह नारा किसी पार्टी का नहीं था बल्कि, उन सभी के दिलों की आवाज थी जो आजादी के दीवाने थे, मातृभूमि के लिये सिर पर कफन बांध कर चलते थे और जीवन से अपने लिये सत्ता, संपत्ति, यश, किर्ती, सम्मान या ऐसी किसी बात की मांग नहीं करते थे, वे दिन थे अगस्त 1942 के ।

फिर भारत स्वतंत्र हुआ, उस घटना को पचास वर्ष पूरे हुए । यादगार स्वरूप फिर से मुंबई के उसी अगस्त क्रांति मैदान पर समारोह का आयोजन हुआ । देशवासियों को याद दिलाने के लिये कि वे दिन कैसे थे। संकट के, त्याग के, संकल्प पूर्ति के, वे देश के लिए मर मिटने की तमन्ना वाले लोगों के दिन थे । उन दिनों की और उन लोगों की याद दिलाने के लिये समारोह का आयोजन हुआ ।

मुख्य समारोह 9 अगस्त को अगस्त क्रांति मैदान पर होना था, उसमे देश के प्रधानमंत्री आने वाले थे | उसके पहले 8 अगस्त को एक समारोह में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री को श्रीमती मृणाल गोरे के साथ देखा गया | विषय था उन दैसी कई ज्येष्ठ स्वतंत्रता सेनानी महिलाओं का सम्मान व गौरव | इस समारोह के फोटो 9 अगस्त को कई अखबारों के पहले पन्ने पर छपे | लोगों ने उसे देखा, पुलिस वालों ने भी देखा ही होगा | उसी 9 अगस्त को प्रधानमंत्री का कार्यक्रम भी था | कार्यक्रम से पहले पुलिस ने कुछ महिलाओं पर लाठी चलाई जिसमें वही मृणाल गोरे भी थीं जिन्हें एक दिन पहले सरकार सम्मानित कर चुकी थी | महिलाओं का अपराध यही था कि वे एक मूक मोर्चा बनाकर अगस्त क्रांति मैदान में जाकर 1942 के शहीदों को मूक श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहती थी, जो वे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हर वर्ष से करती आयी हैं |

वाह साहब, जिन क्रांतिकारियों की याद को उजागर करने प्रधानमंत्री आ रहे हों, उन्ही क्रांतिकारियों को श्रद्धांजलि देने के लिये जानेवालों पर लाठी चलाई गई | मोर्चे में प्रमिला जी दंडवते भी थीं जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ऐसे कई मोर्चों में भाग लिया होगा और विदेशी सरकार के सिपाहियों से लाठियाँ खाई होंगी | आज सबने उन्ही दिनों की याद में फिर अपने ही पुलिस ज्यादातियाँ सहीं | पुलिस की दृष्टि में उनका अपराध यही था कि वे ऐसी जगह जाना चाहती थीं और वर्षों से जा भी रही थीं, जहाँ प्रधानमंत्री आनेवाले थे और पुलिस के लिए प्रधानमंत्री की सुरक्षा व्यवस्था का प्रश्न सर्वोपरि था | श्रीमती मृणाल जी ने उन्हें समझाया कि

प्रधानमंत्री का आगमन समय बहुत दूर है, उनकी मुख्यमंत्री से इस विषय पर बातचीत हो चुकी है और मुख्यमंत्री ने उन्हें मुख्य कार्यक्रम से पहले अपने मोर्चे के साथ जाकर श्रद्धांजलि अर्पित करने की पूर्वानुमति दे दी है । लेकिन नहीं साहब, नहीं। आखिर उन्हें लाठियाँ खानी ही पड़ीं ।

पुलिस की दृष्टि से शायद यह व्यवहार सर्वथा समर्थनीय हो - शायद नहीं । यह जानकारी जनता के लिये बड़ी लाभप्रद सिद्ध होगी कि पुलिस के महकमे से कौन इस व्यवहार को अशोभनीय मानता है और क्यों ? यद्यपि, पुलिस के किसी वरिष्ठ अधिकारी की प्रतिक्रिया अखबार में पढ़ने को नहीं मिली, फिर भी, अनुमान है कि नब्बे प्रतिशत पुलिस इस घटना का समर्थन ही करेगी। आखिर क्यों? तो उत्तर मिलेगा कि साहब पुलिस ऑर्गेनाइजेशन एक ऐसा विभाग है जहाँ वरिष्ठ की आज्ञापालन ही सर्वोपरि माना जाता है । ऐसा न हो तो वहाँ तहलका मच जाये, फिर प्रधानमंत्री की सुरक्षा ऐसा मामला है जहां रिस्क नहीं लिया जा सकता, इत्यादि ।

लेकिन मेरी निगाह में पुलिस का व्यवहार हमारी कमजोर पडती शासकीय व्यवस्था का ही प्रतीक है और उसी शासकीय अव्यवस्था से उत्पन्न भी है । अच्छा शासन कैसा हो ? इस संबंध में महाराष्ट्र के संत राजनीतिज्ञ और शिवाजी के गुरु माने जानेवाले कवि रामदास का एक दोहा है । "जब तुम देखो कि बड़े से बड़ा जनसमुदाय बिना रुकावट के चल रहा है तो वह शासन व्यवस्था अच्छी है, जब जनसमुदाय जगह जगह अटक रहा हो, तो समझो वह शासन अच्छा नहीं है"

-- जनांचा प्रवाहो चालला, म्हणिजे कार्यभाग जाहला, जन ठायी - ठायी तुंबला म्हणिजे खोटे !"

हम भी अपनी शासन व्यवस्था में जगह जगह रुकावटें निर्माण कर रहे हैं । हमारे लिए आज नियम और प्रोसीजर सर्वोपरि बन गया है न कि वह व्यक्ति जिसे उस नियम से परेशानी होनेवाली है । अब नियम कहता है कि प्रधानमंत्री के कार्यक्रम स्थल पर किसी को नहीं आने दिया जाये, तो यह नियम सब पर लागू हो गया, भले ही वह व्यक्ति ऐसा क्यों न हो जिसकी प्रशंसा वही प्रधानमंत्री या राज्य के मुख्यमंत्री कर रहे हों। दुःख इस बात का है कि नियम में बद्ध इस शासन व्यवस्था में प्रमिलाजी जैसी स्वतंत्रता सेनानी पर यह शक किया जा सकता है कि उनके कारण प्रधानमंत्री को खतरा होगा । जब कि प्रधानमंत्री खुद एक स्वतंत्रता सैनिक रह चुके हैं और उन जैसे स्वतंत्रता सैनिकों की यादें उजागर कर उन्हें सम्मानित करने के लिए आ रहे हैं, तो नियम के साथ साथ यह औचित्य-भान हम कब सीखेंगे ?

आज सोचने की आवश्यकता है कि ऐसी घटनाएं क्यों होती हैं। मुख्यमंत्री अवश्य ही मृणाल गोरे और अन्य सामान्य व्यक्ति के बीच का अंतर पहचानते हैं तभी मृणाल गोरे को घटनास्थल पर पहले जाकर श्रद्धांजलि अर्पित करने की अनुमति दी । फिर यह समझदारी कि मृणाल गोरे और अन्य व्यक्तियों में अंतर है, यह पुलिस के कनिष्ठ अधिकारियों या कांस्टेबलों के पास क्यों नहीं हैं ? उन्हें क्यों नहीं सिखाया जाता कि व्यक्ति - व्यक्ति में क्या और कैसे फर्क किया जाता

है? पुलिस को केवल यही बताया गया था कि जो भी आदमी दिखे उसे रोको। चाहे, किसी तरीके से। यही कमजोरी शासन के अन्य हिस्सों में भी है । सामान्य जनों के प्रति आदर दिखाना, उनकी बात की तहमें जाने का प्रयास करना इत्यादि सद्गुण हैं जो सत्ता के वरिष्ठ अधिकारियों के पास भले ही हों लेकिन छोटे अधिकारियों और कर्मचारियों के पास नहीं हैं । क्यों कि हाँ या ना कहने का अधिकार वरिष्ठ अधिकारी अपने पास रखना चाहते हैं । मृणाल गोरे के कार्य को पहचानकर उन्हें घटनास्थल पर जाने की अनुमति मुख्यमंत्री ने तो दे दी, लेकिन यही रवैया, यही डिस्क्रीशन यदि कार्यक्रम स्थल पर उपस्थित कोई डी.सी.पी. दिखाये तो उसे सराहा नहीं जायेगा बल्कि, शायद डाँट ही पड़ेगी । क्योंकि शासन में यह भी मान लिया गया है कि आपके निचले अफसर में डिस्क्रीशन देने की योग्यता नहीं है न तो उनकी योग्यता बढ़ाने का कोई प्रयत्न किया जाता है और न उन्हें कोई डिस्क्रीशन दिया जाना चाहिये । परिणाम यह होता है कि वे भी डिस्क्रीशन का रिस्क नहीं लेना चाहते। हालाँकि, डी.सी.पी. का पद एक बहुत वरिष्ठ पद है, फिर भी 9 अगस्त की घटना में किसी डी.सी.पी. से यदि पूर्वानुमति माँगी भी जाती तो वह नहीं देता । शायद सी.पी. या आई.जी. भी नहीं देते क्योंकि वे भी नहीं जानते कि उनके वरिष्ठ इसे किस निगाह से देखेंगे। हारकर मृणाल गोरे या किसी भी ऐसे व्यक्ति को मुख्यमंत्री के पास ही जाना पड़ेगा ।

इस घटना का एक पहलू और भी है । यदि मुख्यमंत्री ने पूर्वानुमति दे दी थी, तो यह बात नीचे तक क्यों नहीं पहुँची, क्यों कार्यक्रम स्थल की इयूटी पर तैनात पुलिस काँस्टेबल को इसकी सूचना नहीं थी ? फिर जब मृणाल जी ने उन्हें

बताया तब पुलिस के पास ऐसे उपाय क्यों नहीं थे जिसके जरिये तत्काल ऊपर तक संपर्क कर इसके सच झूठ की पुष्टि की जा सके ? इसलिये की कनिष्ठ कर्मचारी ऐसी किसी जाँच को अपनी जिम्मेदारी नहीं मानते - वे तब तक आपको कोई सुविधा नहीं देंगे जब तक आप स्वयं प्रयत्न कर वरिष्ठों के आदेश उनके पास नहीं पहुँचाते । वरिष्ठ खुद भी इसे अपनी जिम्मेदारी नहीं मानते । शासन की एक तीसरी अव्यवस्था भी यहां उभरकर सामने आती है । मान लिया जाये कि मामला चूँकि प्रधानमंत्री की सुरक्षा का था इसलिए पुलिस ने मृणाल गोरे और प्रमिला दंडवते जैसी महिलाओं को भी रोकना उचित समझा । यह भी मान लिया जाये कि उत्सव की गडबडी के कारण न तो मुख्यमंत्री की अनुमति की सूचना काँस्टेबल तक पहुँच सकी और न क्रांति मैदान का कोई पुलिसकर्मी मृणाल जी के बताने पर भी पुष्टि नहीं करवा पाया या मुख्यमंत्री से संपर्क नहीं कर पाया । चलिए, उत्सव की गडबडी में ऐसी छोटी-मोटी घटनाएँ हो जाती हैं । लेकिन जिस तरीके से पुलिस उन महिलाओं से पेश आयी उसका क्या समर्थन हो सकता है ? कम से कम पुलिसकर्मी अच्छा व्यवहार तो दिखा सकते थे । लेकिन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाये तो यह भी असंभव है । जिसके पास लाठी है, शक्ति है, और लाठी चलाने का अधिकार है, उसे जबतक अच्छे बर्ताव का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता और अच्छे बर्ताव का डिस्क्रिशन नहीं दिया जाता तब तक वह अपने अधिकार का प्रदर्शन बुराई से ही करेगा ।

मुख्यमंत्री ने घटनास्थल पर जाकर और महिलाओं से माफी माँग कर अपना बड़प्पन ही दुबारा साबित कर दिया । लेकिन जब तक वे खुद फैसला करके यह कोशिश नहीं करते कि

यही बडप्पन उनके निचले अधिकारियों में भी आये, तब तक ऐसी अशोभनीय घटनाएँ घटती ही रहेंगी।

दै. हमारा महानगर में प्रकाशित, अगस्त 1997